गांधी को हथियाने की बीजेपी की कोशिशों पर पानी फेरता शाहीन बाग

सुभाष गाताडे

हिंदू धर्म में एक कहावत है 'मृत्यु हर प्रकार की शत्रुता को समाप्त कर देती है' (मर्नान्ति वैरानी)। कथा इस प्रकार से भी है कि जब रावण मृत्यु शैय्या पर लेटा हुआ था, तो उस दौरान में भी राम ने लक्ष्मण को उनके पास जाने और कुछ सीख हासिल करने के लिए कहा था, क्योंकि रावण जैसे महान विद्वान के अलावा कोई अन्य व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो इस प्रकार की सीख उन्हें दे सकता था। और यह बात इस उद्घोषणा के साथ की कि रावण के भयानक अपराध के कारण उन्हें दण्डित करने के लिए मजबूर होना पड़ा था, लेकिन 'अब आप मेरे दुश्मन नहीं रहे'।

अब यह एक अलग बात है कि हिंदुत्व की पताका फहरा रहे लोग जो कि हिन्दू धर्म की विभिन्न धार्मिक मान्यताओं को मानने वाले लोगों को एक समेकित जातीय पहचान में समेटने की कोशिश में जी-जान से जुटे हैं, वे उपरोक्त उदात्त हिन्दू धर्म की मान्यता के ही ठीक विपरीत काम में मशगूल हैं।

उनके लिए तो यदि उनका दुश्मन यदि मर भी जाये तो भी उसके प्रति दुर्भावना में कोई कमी नहीं आती, बल्कि उनकी दुर्भावना का कोई अंत ही नहीं है। उनके लिए इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि उनका विपक्षी आज खुद के बचाव के लिए सशरीर इस धरती पर मौजूद नहीं है।

केंद्र की सत्ता पर काबिज हुए करीब साढ़े पांच साल से अधिक का समय बीत चुका है, और हम इस बात के गवाह हैं कि किस प्रकार से उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष के उन सभी महान नेताओं को, जिन्हें वे अपना विरोधी मानते आये हैं, को भद्दी-भद्दी अपमानजक टिप्पणियों से, उनके चरित्रहरण करने और उन्हें इतिहास के कूड़ेदान में फेंक देने का अभियान जारी रहा है। निश्चित रूप से इनमें से कुछ ऐसे 'भाग्यशाली' लोग भी रहे हैं, जिन्हें चपलता के साथ अपना लिया गया/ अधिग्रहित कर लिया गया है, लेकिन वह भी धो-पौंछ कर।

और इस प्रकार भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू को, जिन्होंने अंग्रेजों की जेलों में 11 साल से अधिक का अपना जीवन गुजारा था, और जो युवाओं में बेहद पसन्द किये जाते थे, और जिन्हें महात्मा गांधी द्वारा अपने उत्तराधिकारी के रूप में चुना गया था, और जिनके विजनरी रोल के बिना भारत में स्वतंत्रता की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, इस दौरान उन्हीं के चरित्र को कलंकित करने और खलनायक सिद्ध करने का काम हाथ में लिया गया है।वहीँ दूसरी तरफ सरदार पटेल, बीआर अंबेडकर और गांधी को समायोजित तो किया जा रहा है, लेकिन कोशिश यह है कि चोरी-चुपके से इन सभी को एक नए रूप में हिंदुत्व आंदोलन के प्रतीक के बतौर पेश कर दिया जाये। यहाँ यह उल्लेख करना जरुरी है कि एक तरफ कई वर्षों से गांधी और अंबेडकर को 'प्रात:स्मरणीय' (सुबह याद करने योग्य) की सूची में शामिल कर लिया गया है।

दिलचस्प बात यह है कि 'अपने समय के सबसे बड़े हिंदू' रहे महात्मा गांधी को लेकर एक दोहरी चाल भी चली जा रही है, अच्छा वाला और बुरा वाला महात्मा गांधी, जहाँ एक ओर उन्हें कलंकित करने का अभियान बदस्तूर जारी है, वहीँ साथ ही साथ उनके समायोजन/अधिग्रहण की कोशिशें देखी जा सकती हैं।

याद करें किस प्रकार से उनके उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष की विरासत को पीछे छोड़कर, सिर्फ स्वच्छ भारत अभियान (अक्टूबर 2014) के एक प्रतीक के रूप में महात्मा की छवि को कमतर करने से इसकी शुरुआत की गई थी। या जिस तरह से खादी ग्रामोद्योग आयोग ने बिना किसी शर्मिंदगी के गांधी की तस्वीर की जगह नरेंद्र मोदी को प्रतिष्ठापित कर दिया है। जैसा कि हरियाणा मंत्रिमंडल में एक वरिष्ठ मंत्री का कथन है कि आज खाड़ी के लिए गांधी की तुलना में मोदी कहीं बड़े ब्राण्ड बन गए हैं। या किस प्रकार से गांधी का हत्यारा नाथूराम गोडसे, जिसे आजाद भारत का पहला आतंकवादी कहा जाता है, को सदन के पटल पर 'देशभक्त' कहा जाता है, या देश में जिस प्रकार से उसका महिमामंडन किया जा रहा है और देश के विभिन्न हिस्सों में गोडसे के मंदिर बनाए जाने की बात चल रही है। गाँधी को कलंकित किये जाने की सीमा कहाँ तक जा चुकी है इसे आप उनकी हत्या की घटना को सजीव चित्रण के रूप में एक छुटभैय्ये हिंदुत्व गुट की ओर से उनके कार्यकर्ताओं द्वारा अलीगढ़ आदि जैसी जगहों पर चित्रित करते हुए देख चुके हैं।

इस श्रृंखला में नवीनतम कड़ी के रूप में 'बड़ा सा मुहँ खोलने वाले' बयानबाजी के लिए मशहूर बीजेपी के वरिष्ठ सांसद अनंत हेगड़े का नाम जुड़ गया है।

बेंगलुरु में एक सार्वजनिक कार्यक्रम में

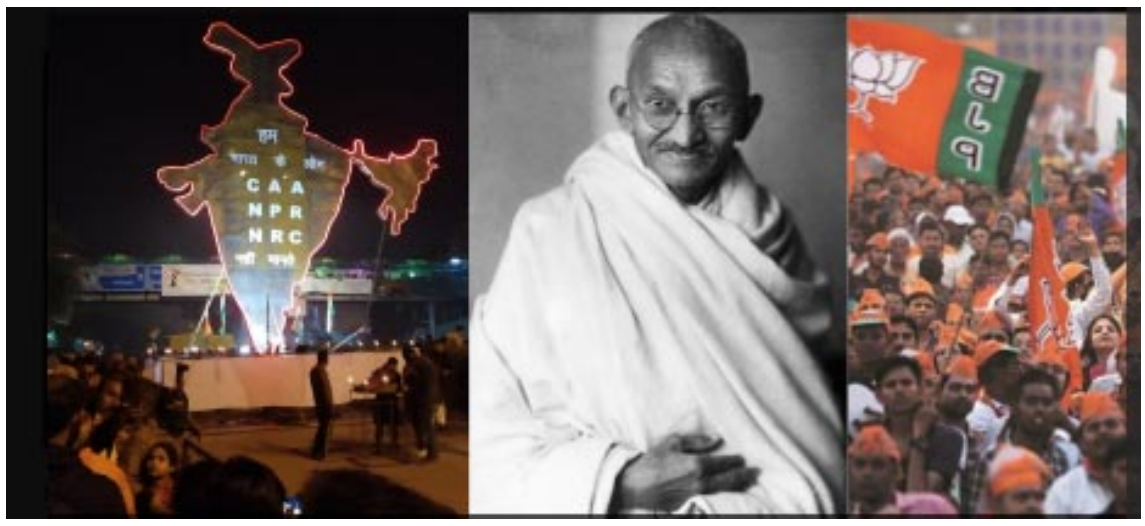

बोलते हुए हेगड़े ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में चले स्वतंत्रता संघर्ष को एक "नाटक" साबित किया और कहा है कि जब वे इतिहास में पड़ते हैं कि किस प्रकार से "ऐसे लोगों को महात्मा कहा जा रहा है", तो उनका "खून खौलने" लगता है।

'नाथूराम गोडसे को चाहने वाला' हेगड़े यहीं नहीं रुकता, बल्कि समूचे स्वतंत्रता संघर्ष और स्वतंत्रता सेनानियों को लानतें भेजता है, जिनके बारे में उसका कहना है कि उन्होंने "अंग्रेजों से पूछा था कि उन्हें आजादी के लिए किस प्रकार से लड़ना चाहिए" था। उसके अनुसार स्वतंत्रता आंदोलन एक "समझौता था, आपस में समझदारी बनाकर, 20-20 (क्रिकेट)" की तरह था। "जिन लोगों ने कभी एक लाठी नहीं देखी और न ही कोई लाठी अपने शरीर पर झेली, उन्हें आज इतिहास के पन्नों में स्वतंत्रता सैनानियों के रूप में उधृत किया जा रहा है।"

पिछले मोदी मंत्रिमंडल में कैबिनेट मंत्री तक रह चके हेगड़े के अपमानजनक बयान से जैसा कि अपेक्षा की जा रही थी, को लेकर व्यापक निंदा सुनने को मिली है। उसके खिलाफ कार्यवाही करने की माँग उठने लगी। यह भी सुनने को मिला कि औपचारिक रूप से भाजपा नेतृत्व की ओर से कहा गया है कि वह हेगड़े की टिप्पणी को लेकर असहज थी, जबकि उनका ट्रैक रिकॉर्ड बताता है कि आज भी प्रज्ञा ठाकुर के खिलाफ कोई भी कार्रवाई करने में वह विफल रहा है, जिसने अनेकों बार गांधी के हत्यारे को महिमामंडित करने का काम किया है। इस बारे में अब यह माना जा रहा है कि इसने हेगड़े को उसकी टिप्पणी को लेकर स्पष्टीकरण देने के सम्बन्ध में नोटिस जारी किया था।

यहाँ पर इस बात को रेखांकित करने की आवश्यकता है कि जिस प्रकार की टिप्पणियाँ की गई हैं उसकी गंभीरता को देखें तो उन्हें समुदायों के बीच असंतोष को जन्म देने के रूप में माना जाना चाहिए, जबकि जो नवीनतम खबर आई है उसमें 'हेगड़े के खिलाफ किसी भी प्रकार के देशद्रोह का मामला नहीं बनाया गया है, जोकि हाल के दिनों में इनका पसंदीदा हथियार रहा है।'

क्या यह कहना सही होगा कि हेगड़े की उपरोक्त टिप्पणी केवल जुबान फिसल जाने की वजह से हुई, या इसे सरकार के तात्कालिक संकट से लोगों का ध्यान भटकाने के लिए, सोची समझी रणनीति के तहत विवाद भड़काने के उद्येश्य से कहा गया था? पार्टी में इस इन्सान की वरिष्ठता और इससे पहले भी कई अपमानजनक बयानबाजी को देखते हुए, जिनके चलते पहले से भी इसके खिलाफ कई केस दर्ज हैं, इस बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि वे बयानबाजियाँ यूँ ही अनजाने में हो गईं।

याद रखें कि जहाँ तक हेगड़े के बयानों को लेकर सवाल उठ रहे हैं, तो इसको लेकर हमें कोई आश्चर्य व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये सिर्फ महात्मा गांधी को लेकर ही नहीं बल्कि महान स्वतंत्रता संग्राम तक को बदनाम करने से नहीं चूकते। ये लोग भारतीय जन के उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष के प्रति अपनी आवश्यक छिपी हुई नफरत के साथ गुंजायमान दीखते हैं। इनके अनुसार देश को जो आजादी हासिल हुई है, उसने 'छद्म-निरपेक्ष लोगों' और उनके सहयोगियों को सत्ता में लाने का काम किया था, और एक हिंदू राष्ट्र के उद्येशों को भारी क्षति पहुँचाई थी। ढेर सारे ऐसे दृष्टान्त हैं जिनसे पता चलता है कि किस प्रकार से इनके संस्थापकों ने शहीदों की खिल्ली उड़ाई और जनता के संघर्षों का मजाक उड़ाया था।

ये हेडगेवार हैं जो राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के संस्थापक सदस्य हैं।देशभक्ति का अर्थ ये नहीं कि सिर्फ जेल चले गए। इस प्रकार की सतही देशभक्ति में बहे चले जाना अच्छी बात नहीं है। (सी.पी. भिशिकर, संघवृक्ष के बीज- डॉ. केशवराव हेडगेवार, सुरूचि, 1994, पृष्ठ 21शहीदों के बारे में आरएसएस के दूसरे सुप्रीमो गोलवलकर का एक उद्धरण इस प्रकार से है-

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि ऐसे लोग जो शहादत को गले लगाते हैं वे महानायक हैं, और उनका दार्शनिक नजरिया भी काफी हद तक मर्दाना है। वे सामान्य पुरुषों से कहीं उच्च स्तर पर विद्यमान हैं, जो भाग्य के भरोसे जीते हैं और भय और निष्क्रियता में ही अपना जीवन गुजार देते हैं। लेकिन इसी के साथ ही ऐसे लोगों को हमारे समाज में आदर्श के रूप में नहीं रखा जाना चाहिए। हम उनकी शहादत को महानता के उच्चतम बिंदु के रूप में नहीं देख पाते हैं, जिसकी किसी पुरुष से आकांक्षा की जानी चाहिए। क्योंकि, आखिरकार वे अपने आदर्शों को हासिल कर पाने में असफल रहे हैं, और असफलता का अर्थ ही है कि उनमें कुछ न कुछ जबर्दस्त कमियाँ रही होंगी। (एम.एस. गोलवलकर, बंच ऑफ थॉट्स, साहित्य सिंधु, बैंगलोर, 1996, पृष्ठ 283)

और तीसरा यह कि जैसा कि स्वतंत्रता संग्राम के किसी भी विद्यार्थी को यह मालूम है कि जहाँ तक आम तौर पर हिंदुत्व के गठन का प्रश्न हो या खास-तौर पर आरएसएस से यह सम्बन्धित है, कि हमेशा से उनका यह एक "कमजोर बिंदु" रहा है। इस तथ्य के बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है, कि न सिर्फ आरएसएस ने उस संघर्ष में भाग नहीं लिया था और खुद का ध्यान 'हिंदुओं को संगठित करने' पर केंद्रित करने पर लगा रखा था, बल्कि इसने अपने कार्यकर्ताओं तक को इसमें शामिल होने पर रोक लगा रखी थी।

दिलचस्प तथ्य यह है कि हिंदू सांप्रदायिक शक्तियों के साथ-साथ मुस्लिम सांप्रदायिक शक्तियों के बीच एक गहरी समानता देखी जा सकती है। ना ही सावरकर और गोलवलकर की पसंद के नेतृत्व वाले हिंदू सांप्रदायिक, और ना ही जिन्ना की पसंद के नेतृत्व वाले मुस्लिम सांप्रदायिक तत्वों ने "भारत छोड़ो" आंदोलन में अपनी कोई हिस्सेदारी दी थी। ब्रिटिश शासन के प्रति उनकी निष्ठाभक्ति तब और भी खुलकर सामने आ जाती है जब आप उस समय की घटनाओं के गवाह बनते हैं जिसमें हिंदू महासभा बंगाल में और आज के पाकिस्तान के कुछ हिस्सों में मुस्लिम लीग के साथ मिलकर संयुक्त गठबंधन की सरकारें इन दोनों ने चलाई थीं।

आइये एक बार फिर से गांधी को बदनाम करने वाले प्रश्न पर लौटते हुए देखते हैं कि इसमें एक अहम सवाल यह उठता है कि संघ परिवार और उससे जुड़े संगठन गांधी के प्रति इस दोहरे रवैय्ये को रोक पाने में खुद को क्यों असमर्थ पाते हैं, जहां एक तरफ तो वे उन्हें काट-छांट कर अपने हिसाब से उपयुक्त बनाना चाहते हैं, अधिग्रहीत करना चाहते हैं, वहीँ साथ ही ठीक उसी समय उन्हें बदनाम करने/ अपमानित करने से बाज नहीं आते।

इस सम्बन्ध में एक दिलचस्प विश्लेषण का उल्लेख करना आवश्यक है, जिसे एक शिक्षक ने तैयार किया है, जिसमें सकारात्मक मनोविज्ञान और मष्तिष्क विज्ञानं सम्बन्धी पृष्ठभूमि के साथ जोड़कर तैयार किया गया था, जब हिंदू महासभा की नेता पूजा शकुनी पांडे को उनके कार्यकर्ताओं के साथ गिरफ्तार किया गया था, जो कैमरों के सामने गांधी की हत्या के दृश्य को एक बार फिर से सजीव चित्रण करने और इसे ऑनलाइन साझा करने में लगे थे। उक्त घटना का वीडियो काफी वायरल हुआ था, जिसमें पूजा शकुनी पांडे, जिसे उसके अनुयायी 'लेडी गोडसे' के नाम से पुकारते हैं, को गांधी के पुतले पर गोली मारते हुए और उनकी हत्या का जश्न मनाते हुए देखा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में रोहित कुमार ने पूछा था- यह हिंदुत्व के उमंग का दिन है। आरएसएस का शासन हर तरफ छाया हुआ है। आधिकारिक तौर पर गांधी को समायोजित कर लिया गया है और उनकी पहचान एक चश्मे और झाड़ू तक सीमित कर दी गई है। तो फिर ऐसे में एक इंसान के लिए इतनी अधिक नफरत की क्या वजह हो सकती है, जो आज जिन्दा भी नहीं है, और वास्तविक अर्थों में देखें तो सभी राजनीतिक उद्देश्यों के लिहाज से भी उपयोगिता अब नहीं रही है?

या उसके पास है?

देखने में यह नफरत के तौर पर नजर आता है, लेकिन क्या असल में यह डर है? घृणा और भय के सम्बन्ध में व्यवहार सम्बन्धी मनोविज्ञान की बारीकियों को समझाते हुए वे वर्णन करते हैं कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, वे आगे सवाल करते हैं- क्या ऐसा भी हो सकता है कि कहीं महात्मा की आत्मा जीवित हो और मजे में हो, और भारत की सड़कों और गलियों में विचरण कर रही हो? जैसा कि हम सभी जानते हैं कि सत्य और अहिंसा नामक दो 'हथियार' उनके पास थे, जिनके बलपर उन्होंने 'युद्ध' छेड़ रखा था। क्या यह सम्भव है कि इन पिछले पांच वर्षों के दौरान जब कभी हिन्दुत्ववादी संगठनों और नेताओं ने इन दो बेहद शक्तिशाली 'हथियारों' को उपयोग में लाये जाते हुए देखा हो तो उनकी नजर गांधी के भूत पर भी पड़ गई हो?

यदि हम पीछे की ओर मुड़कर देखेंगे तो पायेंगे कि उनकी बात में कहीं न कहीं दम जरुर है। मोदी-शाह जोड़ी के शासन की व्यख्या कोई किस प्रकार से कर सकता है, जो अभी हाल तक विजयोल्लास में मदमस्त थी, और अचानक से आज पूरी तरह से रक्षात्मक दिख रही है? पहले से कहीं अधिक सीटें और बढे हुए मतों के प्रतिशत के साथ 2019 की लोकसभा चुनाव की जीत के बाद ही ट्रिपल तलाक के प्रस्ताव पर विजयोल्लास भाव हो, उसके बाद रातों-रात भारत के नक्शे से एक राज्य का विघटन करा देने के बाद, कश्मीरी लोगों के साथ कई दशकों पहले किये गए करार को कूड़े के ढेर में फेंक देने और अयोध्या पर कोर्ट के आये फैसले के साथ, आज ऐसा लगता है कि ये कहीं गुजरे जमाने की बातें हो चुकी हैं। ऐसा क्यों है कि लाखों की संख्या में भारतीय- वे चाहे नौजवान हों या बूढ़े हों, सभी धर्मों, क्षेत्रों और समाज के सभी तबकों से अचानक से संविधान की रक्षा के लिए उठ खड़े हो चुके हैं, और धर्म के आधार पर नागरिकता का मापदंड तय करने वाले संविधान विरोधी कदम को खारिज कर रहे हैं। ऐसा क्यों है कि उस संविधान की प्रस्तावना को, जिसे तब ड्राफ्ट किया गया था जब भारत के प्रधान मंत्री के रूप में जवाहरलाल नेहरू मौजूद थे, एक ऐसा व्यक्ति जिसे कई-कई बार खलनायक के रूप में घोषित करने का काम भगवाधारी कर चुके थे, आज वह अचानक से जनता के उभार का केंद्रबिंदु बन चुका है? ऐसा क्यों है कि शाहीन बाग, जो सदियों से धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव की शिकार रही महिलाओं के लिए एक ऐसे नए ऐतिहासिक विरोध के प्रतीक स्थल के रूप में उभरा है, जो अपने जैसे विरोध प्रदर्शनों को देश भर में प्रेरणा देने का काम कर रहा है?

शाहीन बाग़ के धरने में नेहरू की तस्वीर न होने पर

पुरुषोत्तम अग्रवाल

पहले से कहता आया हूँ कि स्मृति एक नैतिक जिम्मेवारी है, आप अतीत में से क्या याद करते हैं, क्या भूलते हैं यह इस पर निर्भर करता है कि आप भविष्य कैसा बनाना चाहते हैं।

जान कर, अनजाने में, या इस वजह से कि नेहरू की तस्वीर लगाने के मानी यह निकाले जा सकते हैं कि धरने वाले कांग्रेस के करीब हैं, या किसी भी वजह से नेहरू को याद करने से इंकार करने वालों को सोचना चाहिए कि नेहरू की याद को अलग करके वे कैसी भविष्य-कल्पना का परिचय दे रहे हैं। बैगलोर लिटफेस्ट के दौरान कर्नाटक कांग्रेस के एक बड़े नेता ने 'हू इज भारत माता...' की तारीफ करते हुए एक बात कही थी, जौ मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा। उन्होंने कहा था, (नेहरू को हम भले ही भूल जाएं, आरएसएस न भूला है, न भूलेगा।)

कांग्रेसी ही नहीं, नेहरू को और भी बहुत से लोग भूल से गये हैं, शाहीन बाग़ में उनकी तस्वीर न होना अचंभा नहीं, प्रचलित स्मृतिलोप का ही उदाहरण है। "हम" क्यों भूल गये हैं नेहरू को, इस पर फिर कभी बात करूंगा (वैसे इस पोस्ट के अलावा तो करता ही रहता हूँ) , लेकिन आरएसएस क्यों नहीं भूला है इसकी वजह तो फौरन समझी जा सकती है। नेहरू ने ही तो लिखा था, बारंबार याद दिलाया था कि अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता को पहचानना आसान है क्योंकि वह अलगाव के मुहावरे में बात करती है, बहुसंख्यक सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद का मुखौटा पहन कर काम करती है। सन पचपन में कुछ बड़े अफसरों को यह भी नेहरू ने ही याद दिलाया था कि "स्वाधीन , डेमोक्रेटिक भारत को दूरगामी खतरा कम्युनिस्टों से नहीं कम्युनलिस्टों से है।" आज पैंसठ साल बाद, यह बात सही लग रही है या ग़लत?

बहुत से लोग नेहरू पर भारतीय सोच से कटे होने का आरोप भी लगाते हैं, और गांधी को कोसते हैं कि उन्होंने नेहरू को उत्तराधिकारी क्यों घोषित किया, पटेल को क्यों नहीं। इस तथा ऐसे अन्य सवालों पर यहाँ बस दो-एक बातें मुख्तसर में।

सबसे पहले तो पटेल के अपने वे शब्द, जो उन्होंने नवंबर, 1948 में कहे थे। मैं राजमोहन गांधी की पुस्तक दि गुड बोटमैन से उद्धृत कर रहा हूँ--"गांधीजी ने नेहरू को उत्तराधिकारी चुना, और उनके निधन के बाद यह हमारे सामने स्पष्ट है कि उनका फैसला बिल्कुल सही था।"

कम्युनिस्टों के विपरीत नेहरू राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रवाद का महत्व पहचानते थे, और कम्युनलिस्टों के विपरीते वे यह जानते थे कि राष्ट्रवाद कोई सदा से चली आ रही, नहीं ऐतिहासिक क्रम में विकसित हुई भावना है, लेकिन यह भी कि "जब कोई संकट आया है, राष्ट्रीयता उठ खड़ी हुई है...लोगों ने पुरानी परंपराओं में ही ताकत और आराम को ढूंढा है"। उन्होंने अपने समकालीन साम्यवादी विचारकों को यह ऐतिहासिक तथ्य याद दिलाया कि, "राष्ट्रीय परंपराओं में वापस लौटने की बात मजदूरों की जमात में और मेहनत का काम करनेवालों में खासतौर से दिखाई देती है।" (हिन्दुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मंडल, पृ. 710)

भारत की सांस्कृतिक स्मृतियों की निरंतरता का कितना गहरा बोध नेहरू को था, यह उनकी वसीयत में गंगा की काव्यात्मक स्तुति से जाहिर होता है। डिस्कवरी ऑफ इंडिया इसी निरंतरता के सूत्रों और चुनौतियों की खोज है। निरंतरता के इसी बोध और खोज के कारण पंकज मिश्रा जैसे खोखले लिबरल टिप्पणीकार नेहरू को मोदी सरीखों की पाँत में बैठा देते हैं। नेहरू वैज्ञानिक मनोवृत्ति के हामी थे, वे शब्द के सार्थक अर्थों में आधुनिक, विवेकवादी थे, और उनका विवेक जानता था कि "सत्य के कई पहलू हैं, उस पर किसी एक आदमी या राष्ट्र का ही एकमात्र अधिकार नहीं है"। (वही, पृ. 771)

नेहरू धर्म के संगठित रूपों से प्रभावित नहीं हो पाते थे। जिन श्रीश्री और तथाकथित सद्गुरू को श्री शशि थरूर श्रेष्ठ धर्मनेता मानते हैं , उन्हें तो नेहरू शायद एक पल भी न झेल पाते; लेकिन वे मानव जीवन और इतिहास में धर्म की भूमिका को नकारते नहीं थे। जहाँ तक उनके अपने मानस का सवाल था, वे स्वयं को स्पष्ट रूप से अद्वैत वेदांत के निकट पाते थे। उनका मानस भारत माता त्यागी, अमरीकपंथी हिन्दुओं के लिए कितना भी अजनबी हो, आम आस्थावान हिन्दू या किसी अन्य धर्म को मानने वाले संवेदनशील व्यक्ति के लिए नेहरू से संवाद करना बहुत ही सहज था , बावजूद इस तथ्य के कि नेहरू धार्मिक मुहावरे में बात नहीं करते थे।